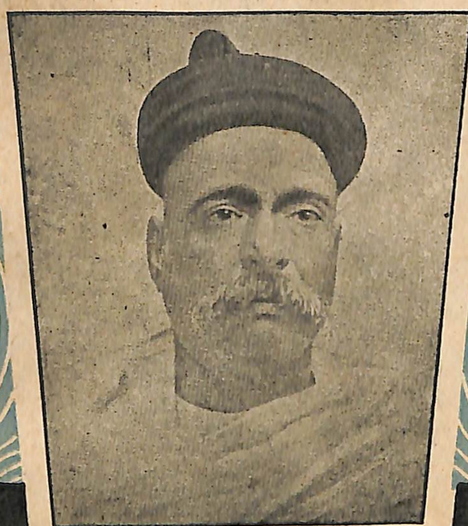


लोकमान्य

# तिलक

राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली



# लोकमान्य तिलक

श्री नवनीतलाल जी
किशोर वाक् प्रतियोगिता
तृतीय पुरस्कार
षष्ठम वार्षिकोत्सव
मंत्री,
हिन्दी सभा, सीतापुर।
५ जनवरी ५१

लेखक

श्री "विनोद"

राजपाल एण्ड सन्ज़

नई सड़क : : दिल्ली

[ मूल्य आठ आना

बालकृष्ण एम० ए० द्वारा युगान्तर प्रेस, मोरी गेट देहली में मुद्रित ।

# विषय-सूची

# लोकमान्य तिलक

## लोकमान्य तिलक की महानता

१६ वीं सदी के पूर्वार्ध तक भारत में अंग्रेज़ों का राज्य पूरी तरह छा चुका था और परतन्त्रता का विष नस-नस में समा गया था। ऐसे समय देश को स्वतंत्रता का सन्देश देने वाला हमारा चरित्रनायक लोकमान्य तिलक ही था। तिलक को लोकमान्य की पदवी इसीलिये मिली थी कि उन्होंने लोक साधारण की व्यथा को समझा था और उसके उपचार के लिये अनथक उद्योग किया था। तिलक के स्वर्गवास को लगभग ३५ वर्ष हुए हैं।

आज के युवकों ने केवल उनका नाम सुना है और यह सुना है कि तिलक ने ही सर्वप्रथम देश को "स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है" यह महामन्त्र सिखाया था। इससे अधिक उन्होंने लोकमान्य तिलक के सम्बन्ध में नहीं सुना। देशाभिमानी युवकों को उनके चरित्र के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान होना चाहिये। स्वराज्य-प्राप्ति का कोई भी इतिहास उनकी जीवन-घटनाओं के उल्लेख के बिना पूरा नहीं हो सकता।

## बचपन और शिक्षाकाल

रत्नागिरि ज़िले के दापोली तालुके में चिखल नाम का एक गांव है। इस गांव के तिलक परिवार की प्रसिद्धि देश-देशान्तर में फैल चुकी है। वहां के विख्यात कवि श्री नारायण वामन तिलक का नाम देश-देशान्तर में प्रसिद्धि पा चुका है। उसी परिवार में लोकमान्य ने भी जन्म लिया। इनके पिता गंगाधर पंत बहुत गरीब ब्राह्मण थे। वेतन ५ रुपये से प्रारम्भ होकर १५ रुपये मासिक तक पहुँचा था। फिर भी वह बहुत अतिथि-सेवक थे। कोई आगन्तुक सत्कार पाये बिना लौट कर नहीं जाता था।

उनकी पत्नी का नाम था पार्वती बाई। १८४६ में उनके प्रथम सन्तान हुई; वह कन्या थी। उसके बाद भी दो कन्याओं का जन्म हुआ।

माता इन्हें केशव नाम से पुकारती थीं। किन्तु घर में उस समय यही सब से छोटे थे इसलिये परिवार के लोग 'बाल' नाम से बुलाते थे। पाठशाला में भी आप 'बाल' नाम से पुकारे जाते थे।

इनके पिता गंगाधरराव शिक्षक होने के कारण गंगाधर शास्त्री नाम से बुलाये जाते थे। अपने बालक को आपने बचपन से ही छोटे-छोटे श्लोक याद करा दिये। उनकी ग्रहण-शक्ति बड़ी विलक्षण थी। खेल-खेल में ही उन्होंने गणित और संस्कृत की इतनी शिक्षा प्राप्त कर ली कि पाठशाला जाने पर उन्हें मास्टरों से कुछ भी सीखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

मास्टरों से उनकी सदा अनबन ही रहती थी। मास्टर जब उन्हें कहता कि "पट्टी पर पहाड़े लिखो" तो आप कहते "इसकी क्या जरूरत है, मैं सब मौखिक सुना दूंगा।" मास्टर एक शब्द बतलाता तो आप उसके कई पर्यायवाची शब्द बतला देते थे। मास्टर से अधिक शब्द-ज्ञान होने के कारण आप मास्टर की शिक्षा में भूलें

निकाल देते थे। आप में अपनी बात पर हठ करने का स्वभाव बचपन से ही था। कठोर से कठोर दण्ड के भय से भी आप अपना हठ नहीं छोड़ते थे।

एक दिन कक्षा में कुछ विद्यार्थियों ने मूंगफली खाकर छिलके फ़र्श पर बखेर दिये। मास्टर के पूछताछ करने पर भी किसी ने अपना अपराध स्वीकार नहीं किया। "सब लड़के अपने हाथ आगे बढ़ाओ" मास्टर ने आज्ञा दी। सब ने इस आज्ञा पर अपने हाथ खोले, लेकिन आप इस हठ पर तुल गये कि हाथ आगे नहीं बढ़ाऊँगा। मास्टर सबकी हथेली खुलवा कर दो-दो बेंत की सज़ा दे रहा था। आपने अपने हाथ बग़ल में दबा लिये और बोले :—

"मैंने मूंगफली नहीं खाई, इसलिए मैं बेंत भी नहीं खाऊँगा।"

मास्टर ने कहा—"तो सच-सच बता दे कि किसने मूंगफली खाई थीं।"

आपको चुग़ली की आदत नहीं थी। इसलिए आप ने कहा—"मैं किसी का नाम नहीं लूंगा और बेंत भी नहीं खाऊँगा।"

इस उत्तर पर मास्टर ने उन्हें स्कूल से निकाल दिया। आपने स्कूल से निकलना स्वीकार किया किन्तु बिना अपराध दण्ड भुगतने के अन्याय का अन्त तक विरोध करते रहे। न्याय के लिये कष्ट सहने का यह स्वभाव आपकी मृत्यु तक आपके साथ रहा।

हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास करके आप डेकन कालेज में दाखिल हो गये। किन्तु कालेज जाने से पूर्व १८७० में, जब आप केवल १४ वर्ष के थे, आपकी शादी हो गई। आपने माता-पिता की आज्ञा के आगे सिर झुका दिया। संसार के सामने कभी न झुकने वाला सिर माता-पिता के आगे सदा झुका रहता था।

कालेज में प्रवेश के समय आपका शरीर बहुत कृश और दुर्बल था। आपकी नव-विवाहिता पत्नी सत्यभामा बाई आपकी अपेक्षा अधिक दृढ़ और सुघड़ शरीर की थीं। इस असमानता के आधार पर कालेज के शरारती विद्यार्थियों ने तिलक को सताना शुरू कर दिया। अपने निर्बल शरीर के कारण सहपाठियों से अपमान सहकर तिलक ने मन ही मन निश्चय किया कि वे भविष्य में विद्या-संपादन को बहुत अधिक महत्व न देकर शरीर-

संवर्धन के लिये प्रयत्नशील होंगे। तिलक का मनोबल विलक्षण था। संकल्पित कार्य में आप तन, मन लगा देते थे। शारीरिक उन्नति का संकल्प करने के बाद वर्ष भर में ही आपने आश्चर्यजनक शारीरिक सौन्दर्य और बल का संग्रह कर लिया। साल भर बाद ही आपकी मांसपेशियां सुदृढ़ हो गईं, चेहरा भर गया, छाती चौड़ी हो गई। सब खेलों में आप योग देने लगे। योग्य व्यायाम और पौष्टिक भोजन के नियमित सेवन से आपके शरीर का प्रत्येक अङ्ग तेजस्वी हो उठा। दुर्बलता या क्षीणता का कोई भी चिह्न शरीर पर शेष नहीं रह गया।

शरीर की निर्बलता को दूर करने के बाद आप फिर विद्याभ्यास में जुट गये। गणित और संस्कृत के विषयों में आपकी योग्यता अद्वितीय थी। कुछ लोगों का विश्वास था कि यह ईश्वरीय वरदान का परिणाम था। सामान्यतया किसी में इतनी प्रखर बुद्धि नहीं होती।

यह प्रखरता विशाल अध्ययन का परिणाम नहीं थी। आप पढ़ते कम, किन्तु मनन अधिक करते थे। पुस्तक का विषय समझ कर और उसे विहंगम दृष्टि से पढ़कर भी आप उसकी विशद आलोचना कर सकते थे।

यह गुण आपके जीवन में सदा स्थायी बना रहा। मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के घोषणापत्र का २-३ घण्टे अध्ययन करने के बाद आपने उस पर जो आलोचना लिखी थी वह जब 'केसरी' में छपी तो उसे पढ़ने वालों ने यही समझा कि आपने उस पर कई दिन चिन्तन किया होगा।

विचार-शक्ति की वृद्धि के साथ-साथ आपकी स्मरण-शक्ति भी कम नहीं हुई। आपकी स्मरण-शक्ति के अनेक कौतुक-भरे कथानक प्रसिद्ध हैं। तिलक ने बड़ी साधना से स्मरण-शक्ति का संवर्धन किया था। इसलिये वृद्धावस्था तक आपकी स्मृति में तरुणावस्था के समान ही सजीवता थी।

कालेज-जीवन के आमोद-प्रमोद में भी आपने बड़े उत्साह से भाग लिया। आपकी बाल-लीलायें आज भी कालेज-जीवन के इतिहास की अमर स्मृतियां बनी हुई हैं।

सन् १८७६ ईस्वी में डेकन कालेज से आप बी. ए. की परीक्षा में प्रथम वर्ग में उत्तीर्ण हुए। इसके बाद बम्बई जाकर एल. एल. बी. की परीक्षा १८७६ में दी। आपके सहपाठियों में न्यायमूर्ति सर नारायणराव चंदा-

वरकर, कौंसिलर सर माधवराव चौवल, प्रिंसिपल आगरकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। वकालत की पदवी देते हुए इन सब से कुलगुरु ने कहा था कि "जाओ, अपनी विद्या को सार्थक करो।" उसे सार्थक करने का प्रयत्न सब ने अपनी-अपनी रुचि से भिन्न-भिन्न रीतियों द्वारा किया। कुछ ने केवल स्वार्थ-साधन द्वारा ही सार्थकता प्राप्त की, कुछ ने थोड़ी समाज-सेवा से ही सन्तोष कर लिया और तिलक व आगरकर जैसे युवकों ने अखण्ड देश-सेवा का व्रत लेकर उसे सार्थक बनाया। इस व्रत के निभाने में उन्हें दारुण कष्टों का सामना करना पड़ा। लक्ष्य-प्राप्ति के मार्ग में आये इन कष्टों को इन सत्यनिष्ठ व्यक्तियों ने हंसते-हंसते झेला।

विद्याभ्यास तक के इस जीवन को तिलक के जीवन-चरित्र का बालकांड कह सकते हैं। शिक्षा समाप्त करने के बाद आपने संसार के कार्यक्षेत्र में उतर कर जो कार्य किये, उनका विवरण अगले प्रकरणों में करेंगे।

## स्वतन्त्र शिक्षण स्कूल की स्थापना

अध्ययन काल मनुष्य के जीवन का बसन्त काल होता है। इस आयु में ही नवीन विचारों के

पुष्प खिलते हैं और पवित्र भावनाओं व ऊँचे आदर्शों की कलियाँ खिलती हैं। इसी काल में तरुण हृदय अपने भावी जीवन की दिशा निश्चित करते हैं।

इस निश्चय में उनके सहपाठी मित्रों की संगति का बड़ा प्रभाव पड़ता है। सहपाठी आगरकर का भी तिलक के विचारों पर बहुत प्रभाव पड़ा। दोनों ही ध्येयवादी और कर्मयोगी थे। दोनों की विचार-धारा में निःसन्देह बहुत अन्तर था किन्तु इस बात में दोनों सहमत थे कि देश का कल्याण करने के लिये दोनों अपने स्वार्थों की बलि दे देंगे। देश सेवा की आग दोनों के हृदयों में एक समान जल रही थी।

इसलिये, दोनों ने ही यह विचार किया कि सरकारी नौकरी की इच्छा नहीं करेंगे। उन्होंने वकालत करके जीविकोपार्जन करने का संकल्प किया। वकालत के लिये स्थान आदि का निश्चय करने में कुछ दिन लग गये। इस बीच उन्हें अपने भावी जीवन को कृतार्थ करने का एक सूत्र मिल गया। उन्हीं दिनों प्रसिद्ध लेखक श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर सरकारी नौकरी छोड़ कर पूना में आये थे। यहां आपने स्वतन्त्र अंग्रेज़ी-शाला का

संचालन शुरू किया था। चिपलूणकर के विचारों का प्रचार उनकी 'निबन्धमाला' द्वारा समस्त महाराष्ट्र में हो चुका था। उन विचारों में बहुत तेजास्विता थी। तिलक के हृदय में भी उन विचारों के प्रति आस्था पैदा हो गई। उन्होंने भी निश्चय किया कि वे चिपलूणकर का पूरा सहयोग देंगे। तिलक के सहयोग से अंग्रेज़ी-शाला का काम बहुत वेग से आगे बढ़ने लगा। शाला की सफलता का यश सारे महाराष्ट्र में फैल गया। विद्यार्थियों की संख्या बड़े वेग से बढ़ने लगी।

इस शाला का नाम तिलक ने 'न्यू इंग्लिश स्कूल' रखा। इस शाला का उद्देश्य अन्य सरकारी शिक्षणालयों की तरह अंग्रेज़ों के गुलाम क्लर्क पैदा करना नहीं बल्कि सच्चे नागरिक पैदा करना था। राष्ट्रीय विचारों का प्रचार करने वाली यह पहली संस्था थी जो सरकारी शिक्षणालयों के विद्रोह में खोली गई थी। महाराष्ट्र के तरुण विद्यार्थियों में स्वावलम्बन और त्याग-वृत्ति बढ़ाना भी इसका उद्देश्य था।

लो० तिलक और चिपलूणकर के स्वभावों में बड़ा अन्तर था, किन्तु दोनों की विचार-धारा एक ही थी।

दोनों की संरक्षता में स्कूल का यश दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। बाद में श्री आगरकर, नामजोशी, बापट आदि सहयोगी भी इस स्कूल में आ गये। इस स्कूल के विद्यार्थी मैट्रिक की परीक्षा में सर्वप्रथम आते थे। परीक्षायें पास हुए विद्यार्थियों में से ८६ प्रतिशत विद्यार्थी इसी स्कूल के होते थे।

इस स्कूल में शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान के अतिरिक्त विद्यार्थियों में राष्ट्रीय भावना का बीज भी बोया जाता था। विद्यार्थियों को चिपलूणकर, तिलक व आगरकर से राष्ट्रीय स्फूर्ति भी मिलती थी। लोकमान्य तिलक का जीवन-व्यवसाय शिक्षक होना नहीं था। वह तो केवल राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर ही शिक्षक हुए थे। उन्हें वैतनिक शिक्षक होने की इच्छा नहीं थी और शिक्षकों की रीति नीति से भी उनका मतभेद था। फिर भी वह युवकों में देश-सेवा की भावना जागृत करने के लिये शिक्षक बने थे। उस समय राष्ट्रीय शिक्षण का प्रोत्साहन करने वाला एक यही स्कूल था, जो लोकप्रिय हुआ था। इसकी संस्थापना का मूल हेतु भी स्वतन्त्रता-प्राप्ति करना ही था। इसलिये लोकमान्य ने इस स्कूल के लिये अपने जीवन को अर्पित कर दिया था।

स्कूल के सफल प्रतिष्ठापन के बाद लोकमान्य तिलक ने इस राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र का विस्तार करने की नई योजना बनाई। अभी तक आपने युवक विद्यार्थियों तक ही अपना क्षेत्र सीमित रखा था, अब आप सर्व-साधारण को भी राष्ट्रीयता का सन्देश देने का उपाय सोचने लगे थे। बहुत विचार के बाद अपने समाचार-पत्र द्वारा जनता को राष्ट्रीय शिक्षा देने का निश्चय किया। लोक-शिक्षण के लिये समाचार-पत्र से अधिक प्रभाव-शाली साधन कोई नहीं—,यह विचार लोकमान्य के हृदय में दृढ़ हो गया। प्रश्न यह था कि यह पत्र अंग्रेज़ी में हो या लोक-भाषा मराठी में। सोच विचार के बाद मराठी में ही पत्र निकालने का विचार स्थिर किया गया। किन्तु मराठी का क्षेत्र केवल महाराष्ट्र तक सीमित था। अतः मराठी के साथ अंग्रेज़ी में भी साप्ताहिक-पत्र प्रकाशित करने का संकल्प हुआ।

## 'केसरी' पत्र का आरम्भ

इन पत्रों के नाम 'केसरी' और 'मराठा' रखे गये। इनके संचाल में लोकमान्य ने अनुपम तपस्या की। अपने कन्धों पर टाइप के केस उठाकर आप छापाखाना

में ले जाते थे और पत्र के छपने के बाद घरों में स्वयँ बांटने भी जाते थे। जब तक ग्राहकों की संख्या ३००० नहीं हो गई तब तक उनके नामों का लेखन हाथ द्वारा होता था। आफिस में टूटी-फूटी कुर्सी और मेज़ रखकर ही सब काम हो जाता था।

'केसरी' प्रकाशित होने के बाद थोड़े दिनों में ही उसका गर्जन सम्पूर्ण महाराष्ट्र में सुनाई देने लगा।

'केसरी' ने अन्याय की आलोचना में बड़ी निर्भयता से काम लिया। उन दिनों कोल्हापुर रियासत के शासन पर कड़ी आलोचना लिखने और रियासत के ब्रिटिश एजन्ट द्वारा वहां के राजा शिवाजी राव पर अत्याचार होने के समाचार प्रकाशित करने से केसरी पर मानहानि का मुक़द्दमा चला। 'केसरी' जनता का पत्र था। जनता ने अदालत में रक्षा का मुक़द्दमा लड़ने के खर्च के लिये 'केसरी' संरक्षकों को यथाशक्ति दान दिया। फिर भी अदालत ने दोनों तरुण संपादकों को ४ महीने की सज़ा का दण्ड दे दिया। संपूर्ण महाराष्ट्र में दोनों के प्रति गहरी सहानुभूति के भाव फैल गये। जनता की दृष्टि में दोनों निर्दोष थे।

## प्रथम जेल-यात्रा

लोकमान्य की जेल-यात्रा का यह प्रथम ही प्रसङ्ग था। उनके सहयोगी आगरकर ने अपने बन्दी जीवन के अनेक अनुभव लिखे, जिनका प्रचार अच्छा हुआ। लोकमान्य तिलक अपने सम्बन्ध में बहुत कम बोलते थे। अपने कष्टों को वह स्वयं चुपचाप झेलना ही पसन्द करते थे। जेल में जाकर जेल के नियमों का पालन करना उन्हें उतना ही पसन्द था जितना घर में रहकर घर के नियमों का पालन करना।

## शिक्षण-संस्था से त्याग-पत्र

इस घटना के बाद 'न्यू स्कूल' के सञ्चालकों ने निश्चय किया कि मण्डली का कोई सदस्य राजनीतिक कार्यों में सक्रिय भाग न ले। लोकमान्य को यह निश्चय पसन्द नहीं था। कई अन्य प्रश्नों पर भी मतभेद शुरू हो गया। 'न्यू स्कूल' की नींव के सुदृढ़ होने के बाद स्कूल सञ्चालकों ने 'फर्गुसन कालेज' का प्रतिष्ठापन किया और दोनों के संरक्षण के लिये 'डेक्कन एज्युकेशन सोसायटी' नाम से संस्था बना दी। इस संस्था की सहायता के लिए जनता व सरकार से प्रचुर सहायता मिलती रही।

अतः संस्था की साम्पत्तिक स्थिति बहुत दृढ़ हो गई।

ऐसी अवस्था में ही प्रत्येक संस्था के व्यवस्थापकों में मतभेद खड़ा होता है। 'न्यू स्कूल' की मण्डली भी दो पक्षों में बंट गई। एक पक्ष में अकेले लोकमान्य थे और दूसरे पक्ष में आपटे व आगरकर का प्रभाव था। लोकमान्य का आग्रह था कि हमें अपनी संस्था को ईसाई मिश्नरियों की तरह त्याग और तप के आधार पर चलाना चाहिए, किसी भी कार्यकर्त्ता को ७५ रुपये प्रति मास से अधिक नहीं मिलने चाहियें और किसी भी कार्यकर्त्ता को अन्य उद्योग-व्यवसाय करने की आज्ञा नहीं होनी चाहिये। मण्डली का बहुमत लोकमान्य तिलक के साथ नहीं था। लोकमान्य सुधार-प्रिय थे, किन्तु मण्डली की विचारधारा उनसे भिन्न थी। प्रत्येक दिन दोनों का विरोध बढ़ता ही गया। उसके शान्त होने की कोई सम्भावना न देखकर लोकमान्य ने मण्डली से त्याग-पत्र दे दिया। यह त्याग-पत्र ३२ पृष्ठों में लिखा हुआ था।

उक्त शिक्षण-संस्था से सम्बन्ध तोड़ने के बाद भी लोकमान्य ने कोई ऐसा काम नहीं किया जिससे संस्था

को क्षति पहुंचती। वे चाहते तो प्रतिस्पर्धा में नया स्कूल खोल सकते थे। किन्तु स्कूल छोड़ने के बाद भी उनका प्रेम स्कूल के प्रति सन्तान प्रेम की तरह कभी कम नहीं हुआ। अपने हाथों लगाये पौधे को वे अन्त तक अपने रक्त से सींचते रहे।

आजीविका के लिये उन्हें अन्य उपायों का अवलंब लेना पड़ा। कानून के विद्यार्थियों को कानून की परीक्षा के लिये तैयार कराने का काम भी आपने कुछ दिन किया। शेष समय में आप 'केसरी' व 'मराठा' का सञ्चालन करते थे। दोनों पत्रों से अधिक लाभ नहीं था, इसलिये आप पर लगभग ७ हज़ार रुपये का ऋण चढ़ गया। फिर भी लो० तिलक ने उसका प्रकाशन जारी रखा। 'केसरी' को आपने कभी आजीविका का साधन नहीं बनाया। उसे आप केवल अपने मत-प्रचार का उत्कृष्ट साधन ही समझते रहे।

तिलक-आगरकर का भेद लोकमान्य के त्याग-पत्र के साथ ही निपट नहीं गया। लोक-सेवा के अन्य क्षेत्रों में भी उसकी छाया पड़ने लगी। दोनों के दृष्टिकोण में मौलिक भेद था। तिलक का यह मत था कि राजनीतिक

सफलता के बाद ही सामाजिक सुधार में सफलता मिल सकती है। आगरकर का यह विश्वास था कि "सामाजिक सुधार होने के बाद ही हम राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति और उसका संरक्षण कर सकेंगे।" लोकमान्य तिलक कहा करते थे कि "धारा-सभाओं में जब तक हमारा बहुमत नहीं है तबतक विरोधियों के हाथ में अपने सामाजिक परिवर्त्तनों की कुंजी दे देना विघातक है।" तिलक के विचार से उस समय देश के सामाजिक सुधार में विदेशी सत्ता का हस्तक्षेप करना अनुचित था। कुछ लोगों ने तिलक के इन विचारों को प्रतिगामी समझा। वे तिलक को सुधार-विरोधी मानने लगे। यह वही दल था जो तिलक को बदनाम करने का बहाना खोज रहा था। लोकमान्य तिलक इन गिने-चुने लोगों के षड्यन्त्र से निरुत्साहित नहीं हुए।

## सङ्गठन कार्य में नया उद्योग

उन दिनों देश में हिन्दू-मुस्लिम उपद्रवों का प्रारम्भ हो गया था। अँग्रेज सरकार का संकेत पाकर कुछ उपद्रवी मुसल्मानों ने हिन्दू त्योहारों में बाधा डालनी शुरू कर दी थी। हिन्दू रक्तपात से डरते थे। दंगई लोग

उनके डरने से और भी उत्साहित होकर रक्तपात करते थे। ऐसे साम्प्रदायिक उपद्रव देश के अनेक स्थानों में हुए। पूना में भी वहाँ के कुछ धर्मान्ध अज्ञानी मुसल्मानों ने उपद्रव शुरू किया। इस उपद्रव को शान्त करने तथा निरपराध व्यक्तियों को न्यायालय से मुक्त करवाने में तिलक ने यशस्वी कार्य किया। उस कार्य से सामाजिक जीवन में उनकी लोक-प्रियता बहुत बढ़ गई।

उस समय लोकमान्य ने हिन्दू जनता को यह उपदेश दिया कि "कुछ मुसल्मान उपद्रवी यदि अकारण उपद्रव करें और तुम्हारे देवी-देवताओं को भ्रष्ट करने का उद्योग करें तो भी तुम उसी समय बदले की भावना से रक्तपात करने पर कमर न कस लो। इस क्षणिक आवेश में तुम अपनी ही क्षति करोगे। इस रक्तपात को रोकने का उपाय केवल यही है कि तुम स्वयं इतने सबल और सङ्गठित हो जाओ कि उपद्रवी मुसल्मानों को तुमसे छेड़छाड़ करने का साहस ही न हो।"

आपने हिन्दुओं के वर्ण-वर्ग भेद को मिटाकर चारों वर्णों को एक स्थान पर लाने का भी उपदेश दिया। केवल उपदेश ही नहीं दिया अपितु उनके सम्मिलन की नई योजना भी बना दी।

यह योजना गणपति-उत्सव को एकत्र होकर मनाने की योजना थी। इससे पूर्व गणपति-उत्सव की पूजा सब लोग अपने-अपने स्थानों पर करते थे। लोकमान्य ने सब को प्रेरित किया कि वे इस महोत्सव को सम्मिलित रूप से मनायें। सब लोग मिलकर एक स्थान में एकत्रित हों और कथा-कीर्तन, व्याख्यान, जुलूस आदि के समारोह में योग दें। इस योजना से पूना के गणेशोत्सव का रूप ही बदल गया। चारों वर्णों के हिन्दू मिलकर बड़ी उमंग से इस उत्सव को मनाने लगे। पूना की सफलता का प्रभाव महाराष्ट्र के अन्य शहरों पर भी पड़ा। आज इस योजना को कार्यान्वित हुए ५० वर्ष बीत गये हैं। अब इस उत्सव ने सार्वजनिक मेले का रूप पकड़ लिया है। इसका समारोह १० दिन तक रहता है। १० दिन तक सब जगह कथा-कीर्तन, व्याख्यान और भजन होते हैं। महाराष्ट्र में इस उत्सव ने विलक्षण जागृति पैदा कर दी है। इसकी योजना लोकमान्य ने स्वयं बनाई थी। उनकी सूझ-बूझ ने ही इसे राष्ट्रीय महत्त्व दिया था। वही इसके प्रणेता और सूत्रधार थे।

लोकमान्य को विश्वास हो गया था कि भारत के

मृतप्राय राष्ट्र में राष्ट्रीय महोत्सवों द्वारा ही नया चैतन्य संचारित किया जा सकता है। इस उत्सव की सफलता ने सिद्ध कर दिया था कि लोकमान्य केवल विद्वान् ही नहीं हैं, प्रतिभाशाली नेता भी हैं; और वे जनता के हृदय को पहिचानते हैं और जनता की भाषा में बोलना जानते हैं। इससे पूर्व महाराष्ट्र में जनता की भाषा में बोलने वाले संत ज्ञानेश्वर, एकनाथ, रामदास और तुकाराम हुए। उन्होंने भी जन-जागृति के लिए उत्सवों का आश्रय लिया था। तिलक ने भी वही मार्ग ग्रहण किया।

गणपति-उत्सव की सफलता के बाद आपने शिवाजी-उत्सव की योजना बनाई। इससे पूर्व शिवाजी की जन्मतिथि पर उनके जन्मस्थान रायगढ़ पर कोई उत्सव नहीं होता था। रायगढ़ में कोई सुन्दर स्मारक भी नहीं था। जो था, वह बहुत जीर्णावस्था में था। लोकमान्य ने उस स्मारक का जीर्णोद्धार करने के लिये धन एकत्रित किया। पहले तो गवर्नर ने शिवाजी-उत्सव के लिये आज्ञा नहीं दी, किन्तु लोकमान्य के अनथक उद्योग से और जनता के प्रबल आग्रह से आज्ञा मिल गई।

इस शिवाजी-उत्सव पर शिवाजी के चित्र का ही

पूजन नहीं हुआ बल्कि महाराष्ट्र की प्रसुप्त आत्मा में नये प्राण भर गये। इसके बाद शिवाजी के स्मृति-चिन्हों की नई खोज होने लगी। शिवाजी के जीवन पर राष्ट्रीय-कवियों ने नया साहित्य बनाया। महाराष्ट्र में नई लहर चल गई। ऐतिहासिक अनुसन्धान शुरु हो गया। शिवाजी का नाम फिर से संपूर्ण महाराष्ट्र में गूंज गया। शिवाजी को ही जागृति, अन्याय के प्रतिकार, स्वतंत्रता और स्वराज्य का प्रतीक मान लिया गया। शिवाजी के स्मरण होते ही राष्ट्रीय-स्वतन्त्रता की नई भावना उमड़ पड़ती थी।

## पुनः जेल-यात्रा

लोकमान्य केवल लेख-द्वारा ही देश-सेवा का व्रत पूरा नहीं करते थे। जनता के प्रत्येक कष्ट से उनकी सहानुभूति थी। सार्वजनिक सेवा का कार्य उन्होंने पूरी लग्न से शुरू कर दिया था।

सन् १८९६ में महाराष्ट्र में दुष्काल पड़ा। उस समय आपने महाराष्ट्र के कृषकवर्ग की अनुपम सेवा की। ग्रामीण प्रजा के कष्टों को ऊँचे सरकारी अधिकारियों तक पहुंचाया और अन्न-वितरण में सक्रिय सहायता दी। १८९७ में प्लेग का प्रकोप हुआ। बंगाल और बम्बई

में सर्वनाश करने के बाद यह रोग पूना में फैला था। भारत में यह रोग प्रथमबार ही प्रादुर्भूत हुआ था। आपने पूना में कई अस्पताल खोले और स्वयंसेवकों की सहायता से रोगियों की सेवा की। दुर्भिक्ष के प्रति सरकार की उदासीन वृत्ति का आपने कड़े शब्दों में विरोध किया। सरकारी अधिकारी इस विरोध से क्षुब्ध हो गये।

सरकार का यह विक्षोभ और प्रचंड होता गया। कई प्रसंग ऐसे आते रहे जब लोकमान्य को सरकार की नीति के विरुद्ध कलम उठानी पड़ी। उन दिनों रानी विक्टोरिया के हीरक महोत्सव की तैयारियाँ हो रहीं थीं। ब्रिटिश सरकार ने जनता की उपेक्षा करके और प्लेग-पीड़ित लोगों के क्रन्दन के बीच हीरक महोत्सव का समारोह शुरू कर दिया। प्लेग व दुष्काल के समय सरकारी अधिकारियों ने जिस हृदय-हीनता और उदासीनता का परिचय दिया था उससे जनता बहुत क्रुद्ध थी। इसलिये उसे हीरक-हर्षोत्सव मनाना सह्य नहीं था। लेकिन जनता की आवाज़ कौन सुनता था। सरकार ने हर्षोत्सव मनाने की तैयारियाँ कर लीं। देश का युवक दल इसके विरुद्ध हो गया। एक युवक दामोदर चफेकर ने प्लेग के स्पेशल अफसर 'रैंड' पर पिस्तौल से हमला

कर दिया। रैंड मरणासन्न हो गया। पुलिस ने इस घटना के बाद पूना में दमन और अत्याचार का चक्र चला दिया। लोकमान्य ने इस अंधाधुन्ध अत्याचार का विरोध 'केसरी' में किया। उनके लेखों ने युवकों में नया उत्साह पैदा किया। सरकारी अधिकार तिलमिला कर रह गये। वे लोकमान्य को राजद्रोह की धारा में पकड़ने का अवसर देखने लगे।

अन्त में १५ जून १८९७ के 'केसरी' के एक लेख पर सरकार ने इन्हें गिरफ्तार कर लिया। श्री बदरुद्दीन तैयब जी तब सेशन जज थे। उनके सामने मुकद्दमा पेश हुआ। अदालत ने लोकमान्य को मुक्त करने के लिये ५० हज़ार की ज़मानत मांगी। उन दिनों राजद्रोह के अपराधियों के लिये ज़ामिन मिलना बहुत कठिन था। तब श्री अप्पा साहब ने व सेठ द्वारिकादास धरमसी ने ज़मानत दी। लोकमान्य तिलक का यह मुकद्दमा यद्यपि कानूनी तौर पर व्यक्तिगत था किन्तु इसको सार्वजनिक महत्त्व मिल गया था। जनता ने आपकी सफ़ाई के लिये आवश्यक धन इकट्ठा किया। स्त्रियों ने आपकी सफलता के लिए मन्दिरों में देवी-देवताओं का पूजन भी किया था।

मुक़द्दमा बम्बई में चला। आपको डेढ़ वर्ष की कड़ी क़ैद की सज़ा सुनाई गई। इस घटना ने आपका नाम भारत भर में उज्ज्वल कर दिया।

उन दिनों की जेल साक्षात् यमपुरी थीं। मोटे कपड़े, रेत मिला अन्न, मैला स्थान और अशिक्षित क्रूर अधिकारियों का अबाधित शासन—जेल का यही स्वरूप था। कैदियों की हड्डी नरम करने के लिये ही खून व डाके के अपराधियों को जेल में भेजा जाता था। पढ़े-लिखे लोग कभी जेल नहीं जाते थे। लोकमान्य को जेल में इतना कष्ट दिया गया कि उनके जीवित रहने में भी शंका होने लगी। तब इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध प्रोफ़ेसर मैक्समूलर तथा अन्य विद्वानों के आग्रह पर सरकार ने लोकमान्य से कुछ नरमी का व्यवहार शुरू किया।

तिलक की गिरफ़्तारी से योरुप के विद्वानों में बड़ी हलचल मच गई थी। कारण, उनके 'वेदकाल निर्णय' संबन्धी लेखों ने उनकी विद्वत्ता का यश योरुप में भी फैला दिया था। उनकी योग्यता पर सभी मुग्ध थे। ऐसे विश्व-वंद्य विद्वान् को जेल की कोठरी में सामान्य अपराधी की तरह बन्द रखना भारत की अंग्रेज़ सरकार के लिये लांछन माना जाने लगा।

तब सरकार ने यह कोशिश की कि तिलक भविष्य में राजद्रोही काम न करने का वचन दे दें। लोकमान्य तिलक ने ऐसी शर्त्त पर छूटने की अपेक्षा जन्म भर बन्दीगृह में रहना अच्छा समझा।

अन्त में एक वर्ष की सज़ा भुगतने के बाद आपको सरकार ने मुक्त कर दिया। अकस्मात् वह दिन दिवाली का दिन था। तिलक की मुक्ति का समाचार बिजली की तरह फैल गया। जनता ने विजयी श्रीराम की मूर्ति के साथ मन्दिरों और घरों में लोकमान्य तिलक के चित्र का भी पूजन शुरू कर दिया। उनकी आरती उतारी गई। हज़ारों लोग तिलक के पुण्य दर्शनों को उमड़ पड़े। हज़ारों लोगों की आँखों से आनन्द के आँसू बह चले। आज तक वे लोकनायक ही कहलाते थे किन्तु आज से वे सच्चे अर्थों में लोकमान्य बन गये। आज से उनका सम्मान जनता के हृदय में अविचल रूप से स्थापित हो गया।

## स्वास्थ्य-लाभ का यत्न

जेल से छूटकर तिलक को कल्पनातीत सार्वजनिक सम्मान मिला; दर्शनों के लिये अपार जनता उमड़

पड़ी। कोई जेल-वृत्त सुनने आता, तो कोई धर्म, राजनीति तथा अन्य विषयों की चर्चा करने आता था। हर समय भीड़ लगी रहती थी। तिलक के स्वास्थ्य के लिये यह उपक्रम ठीक नहीं था। उनका शरीर जेल की कठिन यातनाओं में कृश हो गया था। दैहिक भार १३७ पौंड से गिरकर ११३ पौंड मात्र रह गया था। गालें अन्दर धंस गई थीं, आंखें बाहर निकल आई थीं, पांव लड़खड़ाते थे। इस समय उन्हें संपूर्ण विश्राम की आवश्यकता थी। किन्तु पूना में विश्राम कौन लेने देता? इसीलिए आपको विश्राम के लिये पूना से दूर सिंहगढ़ जाना पड़ा। सिंहगढ़ की शीत, शुद्ध हवा और अमृत तुल्य पानी तिलक को बहुत अनुकूल लगे।

उसी दिसम्बर के महीने में कांग्रेस का अधिवेशन मद्रास में होने वाला था। तिलक उसमें सामान्य प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए, किन्तु भाषण नहीं दिया। डाक्टरों ने व्याख्यान देने का निषेध कर दिया था। मद्रास के नागरिकों ने तिलक का पूरे समारोह के साथ स्वागत किया। मद्रास से आप रामेश्वरम् गये और सीलोन की भी यात्रा कर आये।

अगले वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में होना

था। वहां उपस्थित होने के बाद आपने ब्रह्मदेश की यात्रा की। यही अन्तिम प्रवास था जो आपने प्रवास के उद्देश्य से ही किया था। अन्यथा, उनके सब प्रवास सोद्देश्य ही होते थे और उनका लक्ष्य प्रायः सार्वजनिक कामों की पूर्त्ति करना होता था। इस प्रवास में आपने मद्रासी, सिंहली और बर्मी लोगों का अन्तरंग परिचय पाया। पूना में वापिस आकर आपने इस विषय में कई व्याख्यान भी दिए।

## मानहानि का मुकद्दमा

पूना में रैंड साहब के वध के बाद जब कोई अपराधी गिरफ़्तार नहीं हुआ तो सरकार ने वधिक को गिरफ्तार करवाने के लिये २० हज़ार रुपये का पुरस्कार घोषित कर दिया। पुरस्कार के प्रलोभन से वधिक के एक साथी ने अपने मित्र का नाम बतला दिया। उसके बयान पर दामोदर चाफ़ेकर नामक युवक को पकड़ लिया गया। किन्तु नाम बतलाने वाला भी देर तक जीवित नहीं रहा। चाफ़ेकर के एक मित्र ने उसको भी गोली का निशाना बना दिया।

इस गोलीकांड का सम्बन्ध लोकमान्य से कुछ भी नहीं था, किन्तु बम्बई के 'टाइम्स' तथा इंग्लैंड के

'ग्लोब' पत्रों ने इनका उत्तरदायित्व लोकमान्य तिलक के सिर मढ़ने की कोशिश की। 'ग्लोब' पत्र के सम्पादक ने पत्र में बम्बई के तत्कालीन गवर्नर लार्ड 'नाँर्थकाट' से यह भी निवेदन किया कि 'बम्बई में राजद्रोही मंडली स्थापित है। तिलक की देख-रेख में उसका प्रबन्ध होता है। तिलक का लक्ष्य भारत में पुनः मराठी राज्य की स्थापना करना है।'

लोकमान्य ने इन पत्रों में उक्त वृत्त पढ़ने के तुरन्त बाद दोनों पत्र-सम्पादकों को मानहानि का मुकद्दमा करने की चेतावनी दी। बम्बई के टाइम्स ने तो चेतावनी पाते ही पत्र में क्षमायाचना कर ली, किन्तु ग्लोब अपने हठ पर तुला रहा! किन्तु अन्त में उसे भी झुकना पड़ा। उसने अदालत के व्यय के रूप में ५० पौंड का हर्जाना भी दिया। इस पराजय के बाद भारतीयों के हृदय पर विदेशी पत्रों का जो आतंक छाया हुआ था वह दूर हो गया। भारतीय भी अपने को सम्मानित मानने लगे।

## तिलक और कांग्रेस

विश्राम के बाद आपने फिर 'केसरी' का संचालन अपने हाथों में ले लिया। केसरी की नीति शत-प्रतिशत

राष्ट्रवादी थी। राष्ट्रीयता की विशाल कसौटी पर ही आप सब घटनाओं की परीक्षा करते थे।

काँग्रेस के प्रति तिलक की भावना बड़ी ऊँची थी। आपने केसरी में लिखा था कि "यह संस्था शीघ्र ही पार्लमैन्ट का रूप ग्रहण कर लेगी और देश की राज-सत्ता पर पूरा स्वत्व पा लेगी।" तिलक की भविष्यवाणी सच्ची हुई। तत्कालीन कांग्रेसी नेता भी तिलक को एक निःस्पृह लोक-सेवक मानते थे। सर्वप्रथम राजनीतिक विषयों में तिलक का रानाडे, मेहता व सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से कोई मतभेद नहीं था। किन्तु सामाजिक विषयों में तिलक का मन्तव्य उक्त नेताओं से बहुत भिन्न था। धीरे-धीरे राजनीतिक मतभेद भी बढ़ता गया। तिलक को नरमदली नेताओं की भिक्षावृत्ति राष्ट्रीय सम्मान के लिये विघातक प्रतीत होती थी। तत्कालीन नेता प्रायः नरम दल के ही थे। उन्हें भी तिलक की अग्रगामी नीति से राजद्रोह का भय लगता था। वे सरकार का विरोध नहीं करना चाहते थे। इसलिये जब लोक-मान्य तिलक का नाम काँग्रेस के अध्यक्षपद के लिये पेश किया गया तो इन वयोवृद्ध नेताओं ने उसका विरोध किया।

कांग्रेस के संस्थापक दादाभाई थे। अन्त में १६०६ में उन्हें ही अध्यक्ष बनाया गया। दादाभाई जब कलकत्ता पधारे तो उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। दादाभाई ने ही सब से पहले कांग्रेस के अधिवेशन में यह कहा था कि 'हमारा लक्ष्य स्वराज्य की प्राप्ति है। भारत के सब रोगों का एकमात्र उपाय स्वराज्य ही है।" लोकमान्य ने दादाभाई द्वारा प्रयुक्त 'स्वराज्य' शब्द को देश के कोने-कोने में पहुँचा दिया। किन्तु नरमदली नेताओं से उनकी मुठ-भेड़ होती ही रही। १६०७ में नागपुर में काँग्रेस अधिवेशन हुआ। वहाँ दोनों दलों का विरोध प्रचण्ड रूप में प्रगट हो गया। हाथापाई और मारा-मारी की नौबत आ गई। अगला अधिवेशन 'सूरत' में रखा गया। सूरत नरमदली नेताओं का गढ़ था। किन्तु वहाँ दोनों का संघर्ष और भी उग्र रूप में सामने आया। एक पक्ष ने रासबिहारी घोष का नाम अध्यक्षपद के लिये रखा। लोकमान्य तिलक ने लाला लाजपतराय का नाम पेश किया। दोनों दल खूब तैयारी के साथ सूरत में जमा हुए। पहले दिन स्वागताध्यक्ष का भाषण निर्विघ्न हो गया। किन्तु श्री सुरेन्द्रनाथ के भाषण में श्रोताओं ने शोर मचा दिया। दूसरे दिन जब तिलक-

सभा मंच पर गये तो मनोनीत सभापति श्री रासबिहारी घोष ने तिलक को भाषण करने से रोका। जब वह नहीं रुक सके तो एक ने कुर्सी उठाकर उन पर फेंकी। तिलक ने घोषणा कर दी कि 'मैं अपनी जगह से इञ्च-भर नहीं हटूंगा।" तब तिलक पक्षी लोग मंच पर चढ़ गये। किसी ने जूते का एक जोड़ा मंच पर फैंका जो पहले मेहता के लगकर सुरेन्द्र बाबू के माथे पर लगा। कुर्सियों की फैंका-फैंक शुरू हो गई। पुलिस को बुलाना पड़ा। सभा-मंडप खाली कर दिया गया। कई प्रतिनिधि घायल हो गये।

दूसरे दिन दोनों पक्षों ने भिन्न-भिन्न परिषदों का आयोजन करके अपने २ प्रस्ताव पास कर दिये। इस घटना के बाद नरमदली नेताओं के नेतृत्व का सितारा डूबता ही गया और गरम दल का प्रभाव देश में प्रबल होता गया।

## वज्रपात

भारत में राष्ट्रीय जागृति के साथ अंग्रेज सरकार का दमन-चक्र भी भयंकर होता जाता था। बंग-भंग के बाद बङ्गाल में हिंसात्मक क्रान्ति की लहर चली। विक्षुब्ध

युवकों ने कलकत्ता के माणिकतोला बाग में फैक्टरी बनाकर सरकारी अफ़सरों को डराना-धमकाना शुरू कर दिया था। इस प्रयोग का प्रारम्भ खुदीराम बोस ने मुजफ्फ़रपुर के मैजिस्ट्रेट पर बम फैंक कर किया था। वह बम अपने निशाने से चूककर दो अंग्रेज़ महिलाओं को जा लगा था। दोनों का देहान्त हो गया। पूना में में रैंड साहब के वध के बाद बंगाल में यह दूसरा रक्तपात हुआ था। सरकार के हाथ जब असली अपराधी नहीं आये तो उसने गरमदली कांग्रेस नेताओं की धर-पकड़ शुरू कर दी। मद्रास के चिदम्बरम पिल्ले को १० वर्ष कठोर कारागार की सज़ा दी गई। तिलक ने सरकार की इस अन्याय नीति के विरुद्ध प्रबल आवाज़ उठाई। आपने १२ मई के 'केसरी' में अपने विचार प्रगट करते हुए यह लिखा था :—

''देश में बम गोले विद्यमान् हैं, यह देश का दुर्भाग्य है। किन्तु बम चलाने के अनुकूल परिस्थिति पैदा कर देने का दायित्व सरकार का ही है। सरकार की दमन-नीति ही इसके मूल में है।"

इन टिप्पणियों व लेखों से सरकार के अधिकारी चौकन्ने हो गये। तिलक को गिरफ्तार करने की आज्ञा

मांगी गई। तत्कालीन भारत-मन्त्री मार्ले तिलक पर मुक़दमा चलाने के पक्ष में नहीं थे। किन्तु गवर्नर सर जार्ज क्लार्क मुक़दमे के पक्ष में थे। उनकी आज्ञा से तिलक पर फिर एक लेख द्वारा राजद्रोह फैलाने का अभियोग लगा कर मुक़दमा पेश हो गया। मुक़दमा बम्बई में आठ दिन तक चलता रहा। लोकमान्य ने इस मुक़दमे की स्वयं पैरवी की थी। लगभग २१ घंटा १० मिनट तक वे अदालत में बोलते रहे। एक सप्ताह में मुक़दमा पूरा हो गया। जूरी में सात युरोपियन, दो पारसी थे। सात रायों से तिलक को दोषी ठहराया गया। न्यायाधीश दावर ने अपना फैसला देते हुए लिखा था—

"कानून की दृष्टि से मुझे चाहिये कि मैं तुम्हें आजन्म कालेपानी का दंड दूं, किन्तु तुम्हारी आयु व अन्य कारणों को भी नज़र में रखते हुए मैं वह दंड घटाकर केवल ६ वर्ष के कालेपानी का दंड देता हूं।"

उस समय तिलक की आयु ५२ वर्ष की थी। जीवन भर की तपस्या से शरीर बहुत कमज़ोर था। मधुमेह के रोग ने उसे और भी जीर्ण बना दिया था। इस अवस्था में ६ वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड मृत्यु-दण्ड से भी अधिक क्रूर और भयङ्कर था।

इस दण्ड-घोषणा के बाद देश में शोक के बादल छा गये। असन्तोष की आँधी चारों ओर चल पड़ी। सम्पूर्ण देश में यही चर्चा थी कि सरकार ने ऐसे विद्वान् और देश भर में पूजित-सम्मानित व्यक्ति को इतना कठोर दण्ड देकर पैशाचिक काम किया है।

दण्ड सुनाने के बाद आपको हाईकोर्ट के पिछले रास्ते से कोलाबा ले जाया गया और वहां से रात-रात में अहमदाबाद ले गये।

दूसरे दिन बंबई में स्वयंप्रेरित हड़ताल हुई। बहुत से बाज़ार तो छः दिन तक बन्द रहे। मज़दूरों ने मिलों में जाना बन्द कर दिया। सरकार बहुत चिढ़ गई। बंबई का गवरनर सर-जार्ज क्लार्क—जो बाद में लार्ड सिडनहाम नाम से प्रसिद्ध हुआ—बहुत हठी और क्रूर स्वभाव का था। उसने गोली चलाने की आज्ञा दे दी। गिरफ़्तारियाँ भी शुरू हो गईं। अदालत के हुक्म की आलोचना करने वाले पत्रों पर मुक़दमें चलाये गये। राष्ट्रीय विचारों की अनेक पुस्तकें जब्त करली गईं। गवरनर की इस दमन नीति ने थोड़ी देर के लिये देश की आग को राख में दबा दिया लेकिन लोकमान्य की अर्चना से प्रज्वलित आग शीघ्र ही प्रचंड ज्वाला बनकर भभक उठी।

अहमदाबाद के पास साबरमती जेल में तिलक को रखा गया। वहां आपको इतनी कड़ी मेहनत करनी पड़ी कि १० दिनों में ही आपका भार १० पौंड घट गया। १० दिन बाद उन्हें बंबई लाकर हार्डिंगबोट पर बिठा कर रंगून ले जाया गया। उस बोट में तिलक के सिवाय केवल चार खलासी और कई गोरे सिपाही ही थे। बोट की एक अँधेरी कोठरी में तिलक को बंद कर दिया गया।

इतने निर्दय और क्रूर व्यवहार के होते हुए भी तिलक ने कभी उनकी चर्चा नहीं की। और न ही अंग्रेज़ सरकार से निवेदन किया कि उनके प्रति नरमी का बर्ताव किया जाय। वह शत्रु से दया की भीख मांगना आत्मिक दैन्य का प्रकाशन मानते थे। कष्ट सहने की क्षमता उन में असाधारण थी। उनकी आत्मा इतनी सशक्त थी कि शारीरिक कष्टों की चिन्ता से वह कभी खिन्न नहीं होते थे। लोकमान्य तिलक ने अंग्रेज़ सरकार के हाथों जितने कष्ट उठाये, अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने शायद ही उतने अधिक कष्टों को भोगा हो।

मांडले जेल की एक छोटी-सी कोठरी में उन्हें बन्द कर दिया गया। उसके साथ एक छोटी-सी रसोई और

४–५ फुट का छोटा-सा आंगन था। कोठरी में लोहे का एक पलंग था और टेबल-कुर्सी लगी थी। एक कोने में पुस्तकों से भरी एक अलमारी रखी थी। इस भयङ्कर एकान्तवास में पुस्तकों का अवलम्ब ही तिलक का सब से बड़ा आश्वासन था। दिन का अधिक समय आप पुस्तक पढ़ने या लिखने में ही व्यतीत करते थे।

यहीं रहकर आपने 'गीता रहस्य' के एक हज़ार पृष्ठों का लेखन-कार्य किया। वेद विषयक कुछ पुस्तकें भी लिखीं तथा जर्मन व पाली भाषा का भी अभ्यास किया। मन को एकाग्र करने के लिये आप योग-साधन भी करते रहे।

सन् १६१२ में आपकी पत्नी का देहान्त हो गया। उस समय भी आप उसके समीप नहीं थे, इस दुःख से लोकमान्य बहुत उद्विग्न रहे। इस उद्विग्नता के साथ आपके शरीर को भी रोगों ने घेर लिया। मांडले का जलवायु आपके अनुकूल नहीं था। जेल का भोजन तो रुचिकर हो ही नहीं सकता था। शरीर इतना कमज़ोर हो गया था कि सत्तू के सिवा कोई अन्न नहीं ले सकते थे। दूध पर ही जीवन अवलम्बित था।

उनकी अस्वस्थता को ध्यान में रखकर कई बार उनके इष्ट मित्रों ने उन्हें जेल-मुक्त कराने का यत्न किया, किन्तु सफलता न मिली। बम्बई सरकार हर बार यही कह देती कि "तिलक की मुक्ति अभी शीघ्र सम्भव नहीं है।"

छः वर्ष का अखंड एकान्तवास करने बाद आप १६ जून १६१४ के दिन मांडले से पूना पहुँचा दिये गये। घोर अंधकारमयी रात्रि के बाद सूर्य का उदय हुआ।

मुक्त होने के बाद भी तिलक के विचारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। छः वर्ष की कठिन यातनाओं ने आपकी तेजस्विता को मन्द नहीं बनाया था। उस समय एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए आपने कहा था—"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं छः वर्ष की निद्रा के बाद आज फिर जाग उठा हूँ। छः वर्ष पूर्व मेरे जीवन का जो कार्य-क्रम था वही अब भी रहेगा। मेरे मार्ग में परिवर्तन नहीं हुआ है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि मार्ग पर चलते हुए हमें अपनी अंजलि में पानी भर कर मार्ग शुद्धि कर लेनी चाहिये। छः वर्ष की यातनाओं ने मेरा भी मार्ग-शुद्धि कर दिया है। इस

शुद्धिकार्य के लिये मैं सरकार का उपकार मानता हूं।"

लोकमान्य की तेजस्विता देखकर सरकार फिर चिन्तित हो गई। २५ जुन १६१४ को सरकार ने एक पत्र द्वारा सरकारी नौकरों व सरकार-हितैषी नागरिकों को यह सूचित कर दिया कि लोकमान्य तिलक सरकार का शत्रु है, अतः उनसे सम्बन्ध रखना उचित नहीं। उन पर खुफिया पुलिस की निगरानी भी रख दी गई।

## 'होमरूल लीग' की स्थापना

कांग्रेस में नरम-गरम दल का मतभेद फिर उग्र हो उठा था। कांग्रेस को इन झगड़ों से बचाने के लिये लोकमान्य ने होमरूल लीग की स्थापना की। होमरूल का हिन्दी अर्थ है स्वराज्य; यह संस्था स्वराज्य संस्थापन की संस्था थी। इसके सदस्य बनाने के लिये लोकमान्य ने अनेक प्रान्तों का भ्रमण किया। अनथक परिश्रम से ५०—६० हज़ार रुपये का संग्रह हुआ। यह रुपया तो बहुत कम था—किन्तु लाखों लोगों की सहानुभूति मिली। स्वराज्य-यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। लोकमान्य का सूर्य फिर भारत के आकाश में जगमगा उठा।

सरकार की चिन्ता भी फिर से बढ़ने लगी। वह लोकमान्य को पुनः जेल के सीखचों में बन्द करने का बहाना ढूँढ़ने लगी। आख़िर उसे वह बहाना मिल गया। लोकमान्य ने अहमदनगर में एक भाषण दिया था। उस भाषण को राजद्रोही भाषण कहकर सरकार ने लोकमान्य को यह नोटिस दिया कि "भविष्य में आप राजद्रोही भाषण नहीं करेंगे, यह वचन दें और ज़मानत के तौर पर ४० हज़ार रुपये जमा करायें।" इस नोटिस का उत्तर देने के लिये लोकमान्य को फिर कलेक्टर मि० हेच के सामने जाना पड़ा। मि० हेच ने इस केस को हाईकोर्ट में भेज दिया। हाईकोर्ट में उस समय न्यायमूर्त्ति लल्लूभाई आशाराम तथा मि० बैचलर नाम के न्यायप्रिय न्यायाधीश थे। उन्होंने दोनों पत्तों की युक्तियों को सुनने के बाद लोकमान्य तिलक को दोषमुक्त कर दिया। उनके निर्णय में लिखा था कि "होमरूल मांगना राजद्रोह नहीं है।"

हाईकोर्ट के इस निर्णय ने होमरूल की हलचल को बहुत प्रगति दी। कई अवसरों पर तो होमरूल लीग का महत्त्व कांग्रेस से भी अधिक विशाल प्रतीत होता था।

उन दिनों मांटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड की सुधार-योजना

पार्लमैन्ट के समक्ष प्रस्तुत थी। पार्लमैन्ट के सदस्य उस योजना पर भारतीय लोकमत सुनने को उत्सुक थे। भारत से अनेक शिष्ट-मण्डल इस प्रयोजन से ब्रिटेन जा चुके थे। होमरूल लीग की ओर से भी एक डेपुटेशन भेजने का निश्चय किया गया। लोकमान्य और एनीबेसेन्ट उस डेपुटेशन के सदस्य निर्वाचित हुए। दोनों के सम्मिलित डेपुटेशन ने इंग्लैण्ड की यात्रा की।

लोकमान्य ने जनता को निर्भय होकर स्वराज्य की मांग करना सिखा दिया। इसके पूर्व कोई स्वराज्य का अर्थ नहीं जानता था। अशिक्षित भारतीय तो स्वराज्य की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। शिक्षितों को 'स्वराज्य' नाम से कपकपी उठती थी। लोकमान्य ने भारत के शिक्षित व अशिक्षित समुदाय के हृदय में स्वराज्य की चेतना ही जागृत नहीं की बल्कि स्वराज्य-प्राप्ति को जन्मसिद्ध मानकर निर्भयता से उसके लिये संघर्ष करना भी सिखा दिया।

इसीलिए लोकमान्य की लोकप्रियता संवर्धमान चन्द्र-कला की तरह प्रतिदिन बढ़ती ही गई। मांडले जेल से मुक्ति पाने के दो वर्ष बाद आप ६० वर्ष की आयु के हो गये थे। उस समय तक आपके अनेक सहपाठी और सहयोगी

जीवनलीला समाप्त कर चुके थे। चिपलूणकर, आगरकर और तैलंग तो ४० वर्ष की आयु के आसपास ही स्वर्गवासी हो गए थे। माननीय गोखले भी ४६ वर्ष से अधिक का रास्ता पार नहीं कर सके। लोकमान्य ने इन सबसे अधिक शारीरिक यन्त्रणायें सहन की थीं। उनका संपूर्ण जीवन कष्ट में बीता था। फिर भी आप ६० वर्ष पूरे करके सक्रिय जीवन व्यतीत कर रहे थे। यह सचमुच चमत्कार था। उस अवसर पर आपके दीर्घायुष्य की प्रार्थना करने तथा ईश्वर को धन्यवाद देने के लिए आपके देशवासियों ने आपकी साठवीं जन्मतिथि पर उत्सव मनाने का निश्चय किया। भक्त लोगों ने आपकी सेवा में भेंट देने के लिये एक लाख रुपये का भी संग्रह किया। उचित धार्मिक संस्कारों के बाद गायकवाड़ बाड़ी में विशाल सभा करके आपको मानपत्र भेंट किया गया और एक लाख रुपये की भेंट दी गई। लोकमान्य ने मानपत्र स्वीकार करने के साथ यह घोषणा की कि "मुझे पैसे की आवश्यकता नहीं है। यह धन राष्ट्रीय कार्यों में खर्च किया जायगा।" उस दिन तक किसी एक राष्ट्रीयनेता की सेवा में अर्पित करने के लिये इतना धन कभी एकत्रित नहीं हुआ था।

## राष्ट्र के एकमात्र नायक

मांडले जेल से वापिस आने के बाद लोकमान्य ने यह प्रयत्न किया कि देश के गरम-नरम दली नेताओं में समझौता हो जाय। किन्तु नरमदली नेता समझौते से पहले कांग्रेस के निर्धारित लक्ष्य पर गरमदली नेताओं के हस्ताक्षर चाहते थे। गरमदल का कथन था कि दोनों दलों की सम्मिलित बैठक हो जाय और राष्ट्रीय महासभा का लक्ष्य निर्धारित कर लिया जाय। साधारण बुद्धि से विचार करने पर यही मत युक्तियुक्त भी जँचता था। किन्तु लोकमान्य ने समझौता कराने के उद्देश्य से अपने पक्ष वालों को नरमदल की शर्तें स्वीकार करने को बाधित कर दिया। आखिर थोड़े से प्रचंड उग्रवादियों के अतिरिक्त सब ने तत्कालीन लक्ष्य पर अनुमति दे दी।

फिर भी समझौता न हो सका। माननीय गोखले स्वयं इस समझौते के पक्ष में नहीं थे। उन्हें यह भय था कि वे लोकमान्य तिलक को कांग्रेस में प्रवेश की अनुमति देंगे तो बहुत शीघ्र सम्पूर्ण जनमत उनके साथ हो जायगा। इसीलिये उन्होंने समझौते में रुकावटें डालनी शुरू कर दीं। इन दिनों बम्बई और मद्रास में कांग्रेस के

अधिवेशन हुये। मद्रास में समझौते की पूर्ण संभावना हो गई थी किन्तु माननीय गोखले ने मद्रास-कांग्रेस के अध्यक्ष बा० भूपेन्द्रनाथ बसु के पास पत्र लिखकर यह आशय प्रगट किया कि लोकमान्य तिलक का कांग्रेस में प्रवेश अभीष्ट नहीं है। गोखले ने यह पत्र भी भूपेन्द्र-नाथ बसु के नाम व्यक्तिगतरूप से लिखा था, किन्तु वह पत्र जनता की सम्मति बन गया। 'केसरी' में इस पत्र पर कड़ी आलोचना की गई।

मद्रास कांग्रेस के अवसर पर जो कार्य नहीं हो सका था, वह अगले वर्ष के लखनऊ अधिवेशन में संपन्न हो हो गया। लखनऊ कांग्रेस के अधिवेशन में दोनों दलों ने समझौता करने का संकल्प कर लिया। इस अधिवेशन में देश ने नरम-गरम और हिन्दू-मुस्लिम के भेद भुला-कर एकमत से 'स्वराज्य' की मांग की। ऐक्य स्थापित करने में लखनऊ का अधिवेशन चिरस्मरणीय रहेगा।

लखनऊ की बैठक के बाद नरमदल के दो नेता, माननीय गोखले और सर फीरोज़शाह मेहता का स्वर्ग-वास हो गया। लोकमान्य का दोनों से तीव्र मतभेद था, किन्तु उन्होंने अपने पत्र 'केसरी' में दोनों स्वर्गस्थ नेताओं के प्रति हार्दिक समवेदना प्रगट की, और उन्हें

देश के अमूल्य रत्नों के रूप में स्मरण किया।

लखनऊ के अधिवेशन के बाद लोकमान्य ही देश के वयोवृद्ध, अनुभववृद्ध किन्तु सदा कर्त्तव्यपरायण नेता शेष रह गये थे। वही राष्ट्र के अनभिषिक्त राजा थे, और उनके हाथ में ही राष्ट्र का सूत्र था। उन्हें ही राष्ट्र का सूत्रधार भी कह सकते हैं।

लखनऊ के बाद कांग्रेस का अधिवेशन दिल्ली में हुआ। आपको दिल्ली की बैठक के प्रधान बनाने के लिए देशवासियों का भारी आग्रह था। किन्तु, दैव को यह अभीष्ट नहीं था। उन्हीं दिनों आपने एक ब्रिटिश पत्रकार चिरोल पर मानहानि का मुकद्दमा चलाया हुआ था। चिरोल ने इंग्लैंड से भारत में आकर बहुत सी आश्चर्य-जनक बातें लिखी थीं। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की चर्चा करते हुये उसने लिखा था कि भारत की हिंसात्मक क्रांति के अग्रदूत स्वयं लोकमान्य हैं। लोकमान्य ने इस आक्षेप के विरुद्ध मानहानि का दावा करने की ठान ली। यह दावा कई महीने तक चलता रहा। इसमें लोकमान्य ने न केवल अपना बहुमूल्य समय दिया—बल्कि तीन लाख रुपये भी खर्च किये।

इतने रुपयों की दक्षिणा पाकर भी लोकमान्य का

चित्त अशांत रहता था। उनके मित्र श्री० एन० सी० केलकर व तात्यासाहब ने इस राशि की व्यवस्था की थी। लोकमान्य कहा करते थे कि वह इस ऋण से उन्मुक्त होने के लिये साहित्य की रचना करेंगे और इस रचना से जो पुरस्कार मिलेगा उसकी एक राशि से वह इस कर्जे को पूरा कर देंगे। इस आर्थिक सहायता को वह अपने ऊपर क़र्ज़ा ही समझते रहे।

चिरोल केस का फैसला आपके विरुद्ध हुआ। यह केस चार वर्ष तक चलता रहा। कोई भी सामान्य पुरुष इस संघर्ष से थककर बैठ जाता। किन्तु लोकमान्य में लड़ने की असाधारण क्षमता थी। प्रतिपक्षी से संघर्ष करने में उन्हें आनन्द आता था। लाभालाभ, फलाफल की इच्छा छोड़कर ही वह युद्ध में प्रवृत्त होते थे।

## जीवन का सन्ध्या-काल

अब लोकमान्य की आयु ६४ वर्ष की हो गई थी। उनके जीवन का सन्ध्या-काल आ पहुंचा था। उसकी छाया में ही उनके जीवन के सब उद्योग चल रहे थे। शरीर से जीर्ण-शीर्ण होने पर भी आपकी बौद्धिक शक्ति यथापूर्व प्रखर बनी हुई थी। कार्य की क्षमता भी भीष्म-पितामह की तरह अविचल और अक्षुण्ण थी।

चिरोल केस से निपटने के बाद आपने पुनः कांग्रेस के कार्य में योग देना शुरू कर दिया। कांग्रेस ने आप की देखरेख में 'ब्रिटिश कमेटी' बना दी, जिसका कार्य ब्रिटेन में होमरूल का आन्दोलन करना था। मज़दूर दल के सदस्यों की सहायता से आप ब्रिटिश पार्लमेण्ट में होमरूल बिल पेश होने का आन्दोलन निरन्तर करते रहे। 'माण्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार' के सम्बन्ध में ब्रिटेन की पार्लमेन्टरी कमेटी के सामने आपने जो गवाही दी थी वह बहुत योग्यतापूर्ण थी। भारत की राष्ट्रीय भावनाओं को ब्रिटेन के लोकपक्ष के सामने प्रस्तुत करने के लिये आपने ब्रिटेन में सैकड़ों सभाओं का आयोजन किया और सैकड़ों हस्तपत्रकों का प्रकाशन किया। इस कार्य में अतुल धन की आवश्यकता थी। कांग्रेस ने बहुत परिमित धनराशि आपके हाथों में दी थी। शेष धन आपने होमरूल लीग की ओर से संग्रह किया था।

महायुद्ध के बाद अमेरिका ने प्रत्येक राष्ट्र को 'स्वयं निर्णय' का अधिकार देने की जो घोषणा की थी---उस को भारत के लिये भी स्वीकार करवाने के लिये आपने अध्यक्ष वुड्रो विल्सन को भी पत्र लिखा। अध्यक्ष विल्सन का कहना था कि प्रत्येक राष्ट्र को अपनी इच्छा-

नुसार राज्य-पद्धति बनाने का अधिकार है। इसके समर्थन के लिये ही अमरीका ने महायुद्ध में जर्मनी के विरुद्ध इंगलैंड का पक्ष लिया था। अंग्रेज़ सरकार ने बहुत कोशिश की कि विल्सन के कानों तक तिलक की आवाज़ न पहुँचे किन्तु तिलक ने भी अपने कौशल से और पुरुषार्थ से यह कार्य सिद्ध कर लिया। अमरीका के अध्यक्ष के पास भी भारत की स्वनिर्णय-सम्बन्धी मांग पहुंच ही गई।

## स्वदेश को वापिसी

उधर लोकमान्य इङ्गलैण्ड में भारतीय स्वातन्त्र्य का आन्दोलन कर रहे थे, इधर भारत में सरकार ने महायुद्ध में विजयी होने के मद में चूर होकर ताण्डव नृत्य शुरू कर दिया था। दमनचक्र पूरे ज़ोर पर चल पड़ा था। भारत के भाषण स्वातन्त्र्य, मुद्रण-स्वातन्त्र्य और संघ-स्वातन्त्र्य पर अँकुश रखने के लिये सरकार ने 'रौलट एक्ट' बना दिया था। उसके विरोध में महात्मा गांधी ने प्रबल आन्दोलन की तैयारी की थी। १६०५ के आन्दोलन के बाद ऐसा प्रचण्ड आन्दोलन आजतक नहीं हुआ था। जगह जगह रौलट एक्ट विरोधी सभायें हुईं। सरकार की आज्ञा से फौज ने बन्दूक की गोलियां

चलाईं, निहत्थे लोगों को गोली का निशाना बनाया गया; लाठियों और बर्छियों से निर्दोष, निरीह प्रजा पर हमले किये गये; जलियांवाला बाग में गोरे सिपाहियों ने हज़ारों आदमी भून दिये। किसी-किसी जगह स्त्रियों को नग्न करके उन्हें अपमानित भी किया गया।

महात्मा गांधी ने सत्याग्रह की नींव रखी। अमृत-सर-हत्याकांड की जांच के लिये कमीशन बैठा। इन सब समाचारों को सुनकर लोकमान्य ने ब्रिटेन से भारत आने का निश्चय कर लिया।

भारत में वापिस आने पर बम्बई में आपका भव्य स्वागत हुआ। सत्कार सभा में भाषण देते हुए आपने कहा कि "मान्टेग्यू-चेम्सफ़ोड सुधार योजना के आशा-जनक न होने पर भी हमें निराश नहीं होना चाहिये। उन सुधारों को कार्यान्वित करते हुए हमें उनसे अच्छे सुधारों की मांग निरन्तर करते रहना चाहिये। इसी में हमारी राजनीतिक कुशलता है।" सत्याग्रह अथवा सविनय अवज्ञा आन्दोलन द्वारा जनता को उत्तेजित करने तथा प्रस्तावित सुधार योजना के नितान्त बहिष्कार करने के आप विरुद्ध थे।

## गांधी जी से मतभेद

भारत में वापिस आने के पश्चात् शीघ्र ही आप अमृतसर के सुप्रसिद्ध कांग्रेस-अधिवेशन में गये। पं० मोतीलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष थे। कांग्रेस में 'मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार-योजना' का प्रश्न रखा गया। इस प्रश्न पर महात्मा गांधी और लोकमान्य तिलक में मतभेद था। लोकमान्य ने ब्रिटेन में मज़दूर दली ब्रिटिश नेताओं को आश्वासन दिया था कि प्रस्तावित शासन सुधारों के साथ हमारा प्रतियोगी-सहकार होगा। प्रतियोगी-सहकार का अर्थ यह था कि ब्रिटिश सरकार जहां तक हमारी उन्नति में सहायक होगी वहाँ तक हम भी उसके साथ शासन-कार्य में सहयोग देंगे। लोकमान्य ने महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन के स्थान पर प्रतियोगी सहकार की नीति जनता के सामने प्रस्तुत की किन्तु जनता सरकार के अत्याचारों से क्षुब्ध थी। सरकार की अत्याचार नीति ने उसे उत्तेजित कर दिया था। इसलिये उस समय महात्मा गांधी की ही जीत हुई। बाद में कांग्रेस ने भी प्रतियोगी-सहकार की नीति का ही अवलम्ब लिया। किन्तु उससे पूर्व असहयोग, सत्याग्रह,

आज्ञाभंग आदि अनेक आन्दोलनों की आँधी देश में चलती रही। देश की बागडोर लोकमान्य के हाथ में नहीं रही थी। महात्मा गांधी ही उसके सूत्रधार बन चुके थे।

सम्पूर्ण असहकार या प्रतियोगी-सहकार, इस प्रश्न पर दोनों महापुरुषों का मतभेद अन्त तक बना रहा। किन्तु दोनों हृदयों में एक दूसरे के प्रति अतुल सम्मान था।

## देह-त्याग

लोकमान्य का वृद्ध शरीर अब बहुत थक चुका था। फिर भी आपकी कार्य-तत्परता आश्चर्यजनक थी। इतने थके शरीर से भी आप देश के भिन्न प्रान्तों का भ्रमण करके राष्ट्रीय बल का विस्तार कर रहे थे।

आपकी कार्य-शक्ति को देखकर लोग चकित होते थे तो आप उन्हें कहते थे कि 'मैं अब शरीर से कुछ नहीं करता, केवल मनोबल के आधार पर ही काम कर रहा हूं।"

उनके कथन में शत प्रतिशत सच्चाई थी। केवल आत्मिक-बल के आधार पर ही वे अभी तक लोक-सेवा

में संलग्न थे। आखिर एक दिन बंबई हाईकोर्ट में एक आवश्यक प्रसंग पर आने के बाद आपको ज्वर हो गया। ५–६ दिन के ज्वर के बाद आपकी जीवन-यात्रा का अन्तिम दिन आ पहुंचा। बंबई के सर्वश्रेष्ठ डाक्टरों ने आपकी चिकित्सा की, किन्तु आपको बचा न सके। विधाता ने ३१ जुलाई के दिन भारतमाता की गोद से उसका सब से बड़ा कर्मयोगी पुत्र छीन लिया।

लोकमान्य की श्मशान-यात्रा में लाखों नागरिकों ने भाग लिया। दो-तीन लाख आदमी शवयात्रा के साथ गये। मूसलाधार वर्षा होते हुए भी उन्होंने अपने हृदय-सम्राट के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने के लिये जुलूस का साथ दिया। हजारों स्त्रियां भी जुलूस के साथ थीं। बंबई सरकार ने विशेष आज्ञा द्वारा उनके शवदाह के लिये 'चैकवे' के समुद्रतट का उपयोग करने की स्वीकृति दे दी थी, इसलिये लाखों आदमी उनका अन्तिम दर्शन कर सके। महात्मा गान्धी भी शवदाह के समय उपस्थित थे। उन्होंने लोकमान्य की स्तुति में भाषण भी दिया।

लोकमान्य के देहावसान के बाद उनके नाम से अनेक संस्थायें प्रचलित हुईं। कांग्रेस निधि भी 'तिलक

फंड' नाम से एकत्र हुई। उनके सहकारी नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने विस्तृत जीवन लिखा। वह जीवन-चरित्र १५०० पृष्ठों का है। लोकमान्य के लेखों का संग्रह भी ४-५ खंडों में प्रकाशित हो चुका है। उसकी पृष्ठ-संख्या भी ५००० से कम नहीं होगी। भारत के इतिहास में 'तिलक' नाम का स्मरण सदा अगाध श्रद्धा के साथ किया जायगा। सात्विकता के जीवित अवतार होते हुए भी उनमें अन्याय से युद्ध करने की अद्भुत तेजस्विता थी। विद्वत्ता और तेजस्विता, ज्ञान और कर्म का ऐसा अद्भुत सम्मिश्रण अलौकिक पुरुषों में ही संभव है। ऐसे अलौकिक पुरुष राष्ट्रों के जीवन में कभी-कभी ही अवतरित होते हैं।

## तिलक का व्यक्तित्व

लोकमान्य तिलक का स्मरण आते ही हृदय में एक ऐसे व्यक्ति का चित्र अंकित हो जाता है जो धैर्य, त्याग और बुद्धिमत्ता का जीवित रूप था। इन विशेषताओं के साथ उनका ओजस्वी व्यक्तित्व भी सब से अनोखा बन गया था। उनकी भाषा, उनका स्वरूप, उनकी कार्य-शैली—सब में लोकमान्य के विशिष्ट व्यक्तित्व की अमिट छाप थी।

उनकी वेषभूषा सदा साधारण रहती थी। कपड़ों की सजावट पर उनका ध्यान कभी नहीं गया। भोजन की मात्रा उतनी ही रखते थे जितनी देह के संचालन के लिये अनिवार्य होती थी।

उनके घर में सजावट का कोई सामान नहीं था। फ़र्नीचर के नाम एक मेज़ कुर्सी और एक शैय्या थी। प्राचीन ऋषियों की तरह आपके जीवन में तपस्या की मात्रा अधिक थी। गृहस्थी होते हुए भी आप कठोर तपस्वियों की तरह तापसी जीवन व्यतीत करते थे।

आपकी व्रतनिष्ठा असाधारण थी। एक बार देश-सेवा का व्रत लेकर कभी उससे च्युत नहीं हुए। व्रत को निभाने में दरिद्रता भी आई तो उसे सहर्ष स्वीकार किया; प्रियजनों से अपमान का व्यवहार मिला, उसे भी सहन किया; जेल जाना पड़ा तो हँसते-हँसते ६ वर्ष अखंड एकान्तवास में बिता दिये। इस तरह ४० वर्ष तक देश-सेवा का व्रत निभाते रहे।

लोकमात्र की सेवा को आप सदा उद्यत रहते थे। यह सेवा सदा निःस्वार्थ बुद्धि से होती थी। सेवा का पुरस्कार पाने की कभी इच्छा नहीं की।

## ग्रन्थ-रचना

लोकमान्य तिलक का जन्म देश-सेवा के कार्य में अर्पित हो गया, किन्तु देश-सेवा का व्रत उन्हें देश की अवस्था के कारण लेना पड़ा था; अन्यथा राजनीति से उन्हें उतना प्रेम नहीं था जितना विद्याभ्यास से था। आप ने एक बार अपनी हार्दिक इच्छा को प्रकट करते हुए कहा था—"मेरी इच्छा तो थी कि मैं अन्वेषक रहता और ग्रन्थ लिखता किन्तु घटनाओं ने मुझे राजनीति के क्षेत्र में ला पटका।" अपनी अभिरुचि का बलिदान उन्होंने अपने कर्त्तव्य की वेदी पर कर दिया।

फिर भी आपको जब भी समय मिलता था, आप ग्रंथ-लेखन का कार्य करते रहते थे। सब से पहले आप ने वेदकाल-निर्णय संबन्धी कुछ निबंध लिखे। उनका संग्रह अंग्रेज़ी में 'ओरायन' नाम से हुआ। उसका सारांश जब 'ओरियन्टल कांग्रेस' में भेजा गया तो सब विद्वानों ने उनकी विद्वत्ता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। १६०३ में आपने 'आर्कटिक होम इन् दि वेदाज़' पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने पाश्चात्य विचारकों में अच्छी हलचल पैदा कर दी थी। इन पुस्तकों में वेदों का प्राचीनत्व सिद्ध

किया गया है और वैदिक संस्कृति का उद्गम ८००० वर्ष पूर्व का कहा गया है।

लोकमान्य को गीता से प्रेम था। अनेक बार उन्होंने गीता का पारायण किया था। उनका मन्तव्य था कि गीता निवृत्ति मार्ग की ओर नहीं प्रवृत्ति मार्ग की ओर मनुष्य को प्रेरित करती है। उसमें ज्ञान व भक्ति का ही विवेचन नहीं, अपितु ज्ञान, कर्म और भक्ति का सुन्दर समन्वय है।

आपने 'गीता-रहस्य' नाम से जो पुस्तक लिखी उसकी पृष्ठ संख्या १००० तक पहुँच गई। फिर भी इसका प्रचार बहुत शीघ्रता से हुआ। केवल मराठी भाषा में ही इसकी लगभग ५० हज़ार प्रतियाँ बिक चुकी हैं। भारत की अन्य सब भाषाओं में इसका अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।

## विचार-कण

राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों में लोकमान्य के तेजस्वी विचारों में से कुछ का उल्लेख संक्षेप से यहां किया जाता है। युवकों के लिये इनका मनन करना आवश्यक है। ये विचार मार्ग-दर्शक और कार्य-प्रेरक हैं।

"यह जगत हमारी कृति नहीं है। इसके व्यवहार भी हमारे नहीं हैं; ईश्वर निर्मित हैं। सब काम परमेश्वरा-

र्पण करके और उसके प्रति उत्कट श्रद्धा रखकर ही हम संसार के व्यवहारों को चला सकते हैं। यही गीता का उपदेश है और यही मनुष्यों का कर्त्तव्य है।"

"सत्य की नीति सर्वोच्च है। अन्य मार्गों से राष्ट्र का हित नहीं हो सकता। सत्य की परीक्षा अग्नि में होती है। स्वर्ण के सत्य स्वरूप को सिद्ध करने के लिये हम उसे अग्नि में जलाते हैं। सत्य की परीक्षा केवल इसी तरह हो सकती है।"

"पिछली सदी में हमने अपनी विशिष्टता स्थिर रखने के लिये जाति-धर्म, जाति-बन्धन आदि की कल्पना की थी। इन शब्दों को अब अपने कोष से निकाल देना चाहिये। इन बन्धनों के परिणाम से देश को बहुत क्षति पहुँच रही है। शीघ्र ही इनका अन्त होना आवश्यक है।"

"कोई भी आन्दोलन मनुष्य-विशेष के आधार पर नहीं चलता, धन के आधार पर भी नहीं चलता। उस में कार्य-सिद्धि तभी होगी जब काम करने वाले उसके लिये कुर्बानी करेंगे।"

"स्वदेशी के शत्रु और स्वदेश के शत्रु में कोई भेद नहीं है। जो स्वदेशी का व्यापार नहीं करते उनका पूर्ण बहिष्कार कर देना चाहिये।"

बच्चों के लिए

## सुन्दर, सरल तथा शिक्षाप्रद पुस्तकें